VOL- X | ISSUE- IV | APRIL | 2023 | PEER REVIEW e-JOURNAL | IMPACT FACTOR 7.367 | ISSN 2349-638x

दक्खिनी हिंदी का ऐतिहासिक परिदृश्य

प्रा.डॉ.वीरश्री वशिष्ठजी आर्य
हिन्दी विभाग
वैद्यनाथ कॉलेज,परळी वै.

दक्खिनी, दकनी, रेख्ता, हिन्दुस्तानी, हिंदवी, खडीबोली आदि नामों से जानी, जानेवाली दकनी की उत्पति और उसके भूभाग के साथ ही उसका विस्तार किस प्रकार हुआ यह इस लेख में जानेंगे।

''दकन या दक्खिन शब्द संस्कृत से निकला है। जब आर्य लोग उत्तर और पष्चिम प्रदेशों को पार करके पंजाब पहूँचे तो उनके सीधे हाथ की तरफ जो भाग दृष्टिगत हुआ वह दक्षिण कहलाया। प्राकृत में यह शब्द दक्खिन हो गया और फारसी में यह 'दकन' हो गया।''[१]

दक्खिन की दो नदियॉं नर्मदा और ताप्ति हैं। जो पूर्व से पश्चिम को ओर बहती हैं। विन्ध्याचल से लेकर बंगाल की खाड़ी और अरब समुद्र के तट सब मिलकर दक्खिन हुआ।

''दक्खिनी हिन्दी का उद्भव और विकास'' नामक ग्रन्थ में दक्खिनी के विज्ञ विद्वान् डॉ. श्रीराम शर्मा ने लिखा हे दक्खिनी शब्द से वर्तमान बरार, हैद्राबाद राज्य, महाराष्ट्र और मैसूर राज्य का बोध होता है। इस प्रदेश की गोदावरी और कृष्णा दो प्रधान नदियॉं हैं । दक्खिनी हिन्दी इन्हीं प्रदेशों में विकसित हुई ।

२९ जुलाई २००९ को अंतरराष्ट्रीय सेमिनार लंडन में हुए ''दक्खिनी अ कॉमन फाउंडेशन ऑफ उर्दू ऐंड हिंदी'' विचार गोष्ठी के प्रमुख संयोजक डॉ. जियाउद्दीन शक़ेब का कहना था कि–''खड़ीबोली की शुरुआत १४ वीं १५ वीं सदी में अमीर खुसरो और कबीर जैसे सूफी संतों से हुई जिन्होंने ऐसी भाषा की तलाश की जो सरल और सभी समुदायों को जोड़ सके । उस समय इसका नाम न उर्दू था, न ही हिन्दी । यही भाषा उत्तर भारत से दकन पहूँची जहॉं यह कालांतर में दक्खिनी बनी ।

दक्खिनी आज भी आंध्रप्रदेश, तमिलनाडु और कर्नाटक में आम आदमी की बोली है, जिसने हिंदुस्तान की कई जुबानों को अपने में समेटा है । ये मेलजोल मिलावट और मोहब्बत की जुबान है।''[२]

भारत में शाहजहॉं की विजय के साथ दक्षिण के इतिहास में नये अध्याय का आरम्भ हुआ । अपने राज्य का शासन सुचारु रुप से चलाने के लिए दक्खिन के राज्यों को शाहजहॉं ने चार भागों में विभाजित किया (१)खानदेश (२)बरार (३) तेलिंगाना और (४) दौलताबाद किन्तु मराठों के बीजापूर और गोलकुण्डा पर आक्रमण ने निजामशाही का अंत किंया और शाहजहॉं को दिल्ली और उत्तरी सीमा पर ध्यान देना पड़ा।

सन् १६४१ से १६४४ ई. तक औरंगज़ेब दक्षिण का सूबेदार रहा । १६५२ ई. में उसने बीजापुर और गोलकुण्डा को अपने साम्राज्य में फिरसे मिलाने कि कोशिश की । और १६८३ ई. मे बीजापुर तथा १६८७ ई. में गोलकुंडा औरंगजेब ने फतह किया ।

एकतरफ मुगल सम्पूर्ण भारत को अपनी छत्र छाया में लाने की कोशिश कर रहा था किन्तु दक्षिण के स्वतंत्र मुस्लिम राज्य इस अभिलाषा की पूर्ति में बाधक सिद्ध हुए । मुहम्मद तुग़लक से लेकर औरंगज़ेब तक उत्तर भारत और दक्षिण भारत का सम्पर्क होता रहा । दक्खिन में १५ वीं १६ वीं और १७ वीं शताब्दियों में दक्खिनी, हिन्दी काव्यगंगा की पोषक सरिता बनकर अपने प्रवाह को ले आगे बढ़ने लगी।

दक्खिनी की विकास यात्रा को अपनी पुस्तक 'दक्खिनी हिन्दी का उद्भव और विकास' के अध्याय एक में डॉ. मसूद हुसैन खॉं ने दक्खिनी का उद्भव नव्य भारतीय आर्य भाषा के विकास मे जोड़ा है । उन्होंने लिखा है कि–''दक्खिनी भाषा की शब्दावली , विशेताएं तथा पद व्याख्या दिल्ली के आस पास की बोलियों, विशेषरुप से हरयाणवी और खड़ी बोली से पूरीतरह मेल

खाती हैं । उनके अनुसार दक्खिनी न तो ब्रज भाषा से निकली है और न ही पंजाबी से अपितु इसका उद्‌गम अमीर खुसरो की 'हज़रत देहलवी' के आस–पास की बोलियॉ हैं।''[३]

दक्खिन मे खड़ी बोली हिंदी प्रचार का श्रेय मुसलमानी विजय और उनके भाषायी प्रभाव को भी जाता है। फिर भी दक्षिण में संतों और मुसलमानों के सम्मिलित प्रभाव स्वरुप एक मिली जूली भाषा का प्रचार हुआ जिसे बाद में दकनी/दक्खिनी के नाम से साहित्यिक भाषा का गौरव प्राप्त हुआ।

दक्खिनी को अधिकतर लोग भ्रष्ट उर्दू का एक रुप समझ बैठते हैं। पर यह उचित नहीं, उसे भी उर्दू की तरह खड़ी बोली की एक शैली समझना चाहिए । जिसे गोलकुंडा और बीजापुर के दक्खिनी दरबारों में राजनीतिक विकास रुप प्राप्त हुआ। वास्तव में दिल्ली की खड़ी बोली का दकन में जहॉ मुसलमानी प्रभुत्व था, जाकर साहित्यिक गौरव प्राप्त कर लेना एक आश्चर्य का कारण था । वहीं पर दक्षिण का प्रथम मुसलमानी राज्य बहमनी अपने प्रबन्ध कार्य में हिन्दुओं को ही अधिक स्थान देता था। कहाजाता है कि –''बहमनी राज्य के संस्थापक अमीर हसन ने अपना दफ़्तर दिल्ली के किसी गंगू नामक ब्राह्मण को बुलाकर सौंपा था।''[४]

खड़ीबोली का वह रुप जो दक्षिण में मुसलमानों द्‌वारा प्रयुक्त होता रहा, दक्खिनी कहलाया। इसके विकास में दक्षिण के मुसलमानी लेखकों, नबाबों, दरबारी कवियों ने बहुत योग दिया है। १४ वीं – १५ वीं शताब्दी में इसका बोलबाला रहा । शेख़ सरफ़ुद्दीन एवं कलन्दर नामक कवियों ने इससे कविताएं लिखी ।

दक्खिनी भाषा के विकास में किसने प्रथम इस भाषा का प्रयोग किया इस विषय में मतैक्य नहीं है – इस परम्परा के प्रथम लेखक 'ख्वाज़ा वन्दैनवाज़ गेसूदराज़' माने जाते हैं । इन्होंने (संवत् १४७० ८०) सूफ़ीवाद की गद्य पुस्तक 'मेहराजुल आशकीन' लिखी। अब्दुस्समद (संवत् १६१०) ने अपनी पुस्तक 'तफसीरे बहावी की भाषा को दक्खिनी जबान कहा है ।

दक्खिनी का प्रथम प्रामाणिक प्रयोग वजही में है। वे अपनी पुस्तक 'कुतुबमुश्तरी' (१९३८) ई. में लिखते हैं –''दखिन में जो दखिनी मीठी बात का । औदा है वह किसी और भाषा को नहीं ।''[५]

कुछ उर्दू लेखकों ने लिखा है कि दक्खिनी को बाद में रेख़्ता भी कहने लगे थे।

''दक्खिनी लेखकों मे मुहम्मद हुसैनी की कृतियां – मोराजुल आशकीन, हिदायतनामा, रिसाला सेहबारा प्रमुख हैं । इनके पोते अब्दुल्ला हुसैनी की 'निशातुन इश्क प्रमुख हैं। दक्खिनी भाशा के विकास में सुलतान मुहम्मद कुली कुतुबशाह सुल्तान इब्राहिम दिलशाह, शाह भीरांजी , बुहानुद्दीन जामिन, इब्निशाती, वली औरंगाबादी, जईफी, बहरी, बजदी, इन्शस्ती आदि के नाम तो आते ही हैं किन्तु लाला सोहन लाल, महताब एवं लाला लक्ष्मीनारायण 'शफीक' जैसे हिन्दुओं के नाम भी कम महत्वपूर्ण नहीं हैं। इनकी हलम की ठुमरियां और 'अजमत' की मुक्तक रचनाएं भी श्रेष्ठ साहित्य की श्रेणी में आते हैं ।''[६]

दक्खिनी के साहित्यकारों मेँ अब्दुल्ला, वजही, निजामी, गवासी, गुलामअली तथा बेलूरी आदि प्रमुख हैं । दक्खिनी की केवल लिपि ही फारसी है, अन्यथा इसकी भाषा में सामन्य हिंदी की भॉति ही, भारतीय परम्परा के शब्द पर्याप्त हैं। उदाहरण तौर पर कुतुब – मुश्तरी के स्वदेश – प्रेम पर लिखित २००० शेर का यह शेर देखा जा सकता है । जिसे प्रदीपशर्मा खुसरो ने 'दिक्खनी हिन्दी, कुतुब–मुश्तरी २००० शेर' किताब में दर्शाया है –

''दखिन सा नहीं ठार संसार में । निपज फ़जिलाका है इस ठार में ।।
दखिन है नगीना अंगूठी है जग । अंगूठी कूॅ हुर्मत नगीना ही लग ।।
दखिन मुल्क कूॅ धन अजब साज है। कि अब मुल्क सिर होर दखिन ताज है।।
दखिन मुल्क मौते च खासा अहै । तिलंगाना उसका खुलासा अहै ।।''[७]

दक्खिनी हिन्दी का सूफ़ी साहित्य समृद्‌ध और सम्पन्न है । उसमें असंख्य प्रेमाख्यान तथा आख्यान काव्य मिलते हैं जो सुफ़ीयत तथा सिद्‌धान्त से ओतप्रोत हैं । दक्खिनी में मुक्तक काव्यविधा के अन्तर्गत भावगीत, क़सीदे, गज़ल, मर्सिये आदि नाना प्रकार के काव्य पाये जाते हैं। भाव और कला की दृष्टि से यह काव्य विधा उज्वल रही है। दक्खिनी हिन्दी के बहुत से सूफ़ी साधक फ़ारसी और अरबी के प्रकाण्ड पण्डित थे । दक्खिनी हिन्दी साहित्य की समृद्‌धी में बीजापूर और

गोलकुण्डा ने भलेही विशेष सहायता पहूँचाई फिर भी इनमें प्रेमाख्यानक काव्य तथा गज़लें पमुख रहीं । दक्खिनी हिन्दी के प्रमुख सूफ़ी गजलकारों में वजही, गवासी, नुस्रती बुरहान बीजापुरी, जान मुहम्मद मुहर्रमी, शाह सादिक़, सिराज़ औरंगाबादी आदि प्रमुख रचनाकार प्रसिद्ध हुए । इनकी गजलों मेँ प्रेम , बुद्धि, हृदय की प्रेम–पीड़ा उपदेश विरह, मिलन, अध्यात्मक, रहस्यवाद, प्रशंसा, अद्वैतवाद आदि विषयों पर आधारित प्राप्त होती हैं । संक्षेप में कुछ उदाहरण यहॉ देखेंगें जैसे – अपने हृदय की प्रेम पीड़ा के सम्बन्ध मे गवासी कवि लिखता है–

''दर्द दुख मुंज दरोनी का सू जानो यान जानो कोय
मैं अपनाकर तू जान्या हूँ दर्द होर दुक हर शै का
मुहब्बत में जिया देने न कर सूं कुछ बखीली में
के मेरा दिल ग़वासी यूं है ज्यूं के हातमताई का''

– कुल्लियाते ग़वासी पृ. १०७

सन् १७१४ ई. मे महाराष्ट्र के औरंगाबाद में पैदा हुए गज़लकार सिराज औरंगाबादी ने अपनी गज़लों में आध्यात्मिक प्रेम की अभिव्यंजना की है । जिनकी गज़ल में वियोग की तीव्रता पाई जाती है। आध्यात्मिक विरहानुभूति का चित्रण द्रष्टव्य है–

''दुरंगी खूब नहीं यक रंग हो जा, सरा पा मोम होया संग हो जा ।
तुझे ज्यों ग़न्या गर है दर्द की लू, लहू का घूंट पी दिल तंग हो जा ।
कन्हा किस तीरा दिल ने तुजको ए गम, कि दिल की आरसी पर जग हो जा।
यही आहों के तारों में सदा है, कि बार ग़म से ख़म ज्यो चंग हो जा ।
दुआ है, ए कह ग़म तूल उम्रक, कदम पर है तू सू फरसंग हो जा ।
गले में डाल किसवाई की अल्फी, अलिफ खींच आह का बेजंग हो जा ।
बिरह की आग में साबित क़दम चल, सिराज अब शमे का हमरंग हो जा ।।''[८]

– इन्तख्वाब सिराज औरंगाबादी

दक्खिनी हिन्दी में उपलब्ध सूफ़ी साहित्य दीर्घकालीन होने के साथ साथ ऐतिहासिक महत्व रखने वाला है । गुण और परिणाम की दृष्टि से भी यह अत्यंत समृद्ध है । अवधी सूफ़ी प्रेमाख्यानों की भॉति दक्खिनी हिन्दी के सूफ़ी प्रेमाख्यान भी हिन्दी की अक्षय निधी हैं । दक्खिनी हिन्दी में मुल्ला वजही ही पहले कवि हैं जिन्होंने सर्वप्रथम सन् १६०९ ई. में ''कुत्बमुश्तरी'' नामक प्रेमाख्यान लिखा । वजही के साथ प्रवाहित सूफ़ी प्रेमाख्यान काव्यधारा एक सौ चालीस वर्ष तक दक्खिनी हिन्दी में अबाध रुप से प्रवाहित हुई । दक्खिनी हिन्दी के प्राय:. सभी प्रेमाख्यानकारों ने अनेक सूफी मुक्त काव्य भी लिखे हैं ।

दक्षिण के सूफ़ी आचार्यों में 'बन्देनवाज़' का नाम सर्वप्रथम आता है । इनको ''सुलतानुल कलम'' की उपाधि प्राप्त थी । इतिहासकारों ने बताया है कि जब बन्देनवाज़ अध्यात्म ज्ञान का अध्यापक बनकर काम करने लगे तब अपने शिष्यों के लिए ग्रन्थ रचना भी करते रहे । साथ ही उन्होने दक्खिनी हिन्दी में अनेक गीत रचे हैं।, जिनकी प्रामाणिकता असंदिग्ध है । बन्देनवाज ने कुल मिलाकर ग्यारह राग'रागिनियों में गीत रचे हैं । उनकी शिष्य परम्परा में मीरॉजी शम्सुल उश्शक़ का महत्वपूर्ण स्थान है । जो कबीर के समकालीन माने जा सकते हैं ।

कर्मकाण्ड की निन्दा करते हुए मीरॉजी ने मुंडन, तीर्थ, व्रत आदि भक्ति के बाह्य आचरणों के विरुद्ध उक्तियॉ कही हैं । मीरॉजी की काव्य कृतियों में ''खुशनामा'','खुशनग्ज, और 'शहादतुल हक़ीकत' प्रमुख हैं ।

मीरॉजी के सूपुत्र बुरहानुद्दीन जानम ने पिता की मृत्यु पर प्रथम शोकगीत लिखा था । उस समय हिन्दी लिखना–पढ़ना आदरणीय नहीं समझा जाता था । हिन्दी के प्रति अनादर प्रकट करने वाले दक्षिण के हिन्दी विरोधियों को उत्तर देते हुए जानम ने अपने प्रसिध्द काव्य ''इर्शादनामा'' के आरम्भ में लिखा

''ऐब न राखे हिन्दी बोल,
माना तो चक देखें खोल । (चक–चक्षु)

जानम ने गद्य में सात और पद्य मे बारह ग्रन्थों की रचना की । जानम की विद्वत्ता, प्रतिभा , हिन्दू दर्शन से उनकी गहरी आस्था आदि को समझन हो तो उनको प्रसिद्ध ग्रथ ''इर्शादनामा'' पढ़िए । जिसमें ईश्वर के अस्तित्व, सृष्टि की उत्पति, पंचतत्व और तन्मात्राएँ, ईश्वर जीव, सृष्टी, स्थूल–सूक्ष्म प्रकृति और ईश्वर, चार तनमात्रा, लोक, चिन्तन, जप आदि तसब्बुफ़ के सभी विषयों के सरल ढंग में २२३० पंद्यों में समझाया गया है ।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि दक्खिनी हिंदी में भले ही बन्देनवाज़ ने सर्वप्रथम अपने व्यक्त विचारों को प्रस्तुत किया । फिर बहुत से सूफी – साधकों ने हिन्दी को अपने सिद्धान्तों के प्रचार का वाहक बनाया । सैद्धानिक ग्रन्थों की दृष्टि से दक्खिनी हिन्दी उत्तरी हिन्दी के सूफ़ी साहित्य से भी एक कदम आगे रही । दक्खिनी हिन्दी के आदिकालीन सूफ़ी आचार्यों ने भारतीय परम्परा को स्वीकार करते हुए अपने समन्वयात्मक दृष्टिकोण को अभिव्यक्त किया । बन्देनवाज की परम्परा के समस्त सूफ़ी सतों ने समन्वय भावना की बात की है ।

दक्खिनी रियासतों में इस्लाम धर्म के प्रचारक इन सूफ़ी साधकों को आश्रय देते थे । दक्खिन के सुल्तानों के दरबार में हिन्दी पल्लवित और विकसित हुई । दक्खिन के सूलतानों में भी प्रतिभावान साहित्यकार उदित हुए । सुल्तान मुहम्मद कुली कुत्बशाह, इब्राहीम अली, आदिलशाह जैसे मेधाबी साहित्यकारों के सम्बल ने दक्खिनी हिन्दी को समृद्ध किया ।

दक्खिनी हिन्दी के सूफ़ी कवियों ने जहॉ एक और हिन्दी भाषा और साहित्य के विकास में अपने हाथ बटाये वहॉ दूसरी और अपनी समन्वयवादिनी प्रवृत्ति से जीवन–दर्शन की विविधताओं को मिटाकर एकता स्थापित कर दी । इस प्रकार, दक्खिनी हिन्दी सूफी साहित्य के महत्व के अनेक कारण रहे हैं । यही कारण रहे कि दक्खिनी हिन्दी के सूफ़ी कवियों की सांस्कृतिक देन उत्तर के सूफ़ी कवियों की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण रही है । विदेशी भाव को भी जिन्होंने अपने देश के अनुरुप बदल देने में अद्भुत क्षमता को दर्शाया और फारसी कथानकों को भारतीय काव्य रुढियों और परम्पराओं से समन्वित करके प्रस्तुत किया, जिस शैली का इन्होंने अवलम्ब किया वह तथा उनकी प्रवृत्ति आज भी दखनी हिन्दी के विकास में प्रशंसनीय है ।

संदर्भ सूची :–

१) दक्खिनी हिन्दी की विकास–परम्परा– डॉ. वी.पी. मुहम्मद कुंज मेत्तर–पृ.१३
२) हिन्दी News-bbc.com ''हिन्दी उर्दू का संगम है दक्खिनी बोली'' ललित मोहन जोशी – वरिष्ठ फिल्म समीक्षक लंडन से बीबीसी हिन्दी डॉट कॉम के लिए – २९ जुलाई २००९
३) दक्खिनी हिन्दी का उद्भव और विकास – डॉ. मसूद हुसैन खॉ–अध्याय एक Shodhganga.inflibnet.ac.in
४) खड़ी बोली का आंदोलन–डॉ.शितिकंठ मिश्र–नागरीप्रचारिणीसभा,काशी, पृ.३८
५) ज्ञान का हिंदी महासागर–दक्खिनी हिंदी – भारतकोष– bharatdiscovery.org>india
६) हिदी भाषा का उद्भव और विकास–सदाविजय आर्य, नरेश मिश्र–पृ. ७९
७) 'दक्खिनी हिन्दी कुतुब–मुश्तरी २००० शेर' प्रदीप शर्मा खुसरो–स्वदेश प्रेम Dakhini Hindi ignca.nic.in
८) दक्खिनी हिन्दी भाषा और साहित्य विकास की दिशाएँ – डॉ.वी.पी.मुहम्मद कुंज मेत्तर पृ. ११२